इकाई 12 दक्षिण भारत

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 क्षेत्र
12.3 राजनीतिक शक्तियों का उदय
12.4 दक्षिण भारतीय राजनीतिक संगठन पर विभिन्न दृष्टिकोण
12.5 उप-क्षेत्रीय राजनीति
12.6 कृषि व्यवस्था एवं राजनीतिक संगठन
12.6.1 नाडू
12.6.2 ब्रह्मदेय
12.6.3 वालानाडू
12.6.4 मंदिर
12.6.5 नगरम : बाज़ार केन्द्र
12.7 कर-व्यवस्था
12.8 नौकरशाही
12.9 सैन्य संगठन
12.10 नियंत्रण की व्यवस्थाएं
12.11 दक्षिण भारतीय राजनीति के वैचारिक आधार
12.12 सारांश
12.13 शब्दावली
12.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- क्षेत्रीय राजनीति के परिवेश में दक्षिण भारत की विशेषताओं को सुनिश्चित कर सकेंगे;
- राजनीतिक शक्तियों के व्यापक प्रतिबिंबों का चित्रण कर सकेंगे;
- संबंधित क्षेत्र के राजनीतिक संगठन के अध्ययन की महत्त्वपूर्ण प्रणालियाँ के विषय में जान सकेंगे;
- राजनीतिक संगठन के मुख्य-मुख्य केन्द्रों और उसके सामाजिक-आर्थिक आधारों का विवरण दे सकेंगे;
- सन् 800 ई. से 1300 ई. के बीच की दक्षिण भारतीय राजनीति के वैचारिक आधारों की रूपरेखा बना सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

प्रारंभिक मध्यकालीन राजनीति की क्षेत्रीय विशेषताओं से संबंधित यह अंतिम इकाई है। इस इकाई में दक्षिण भारत को लिया गया है। दक्षिण भारत के अंतर्गत प्रायद्वीप का वह भाग है, जो 13° उत्तरी अक्षांश के दक्षिण में स्थित है। इसका प्रारंभ छठी सदी ई. में पल्लवों के उदय के साथ हुआ तथा इसका अंत नौवीं सदी ई. में तमिल त्रिभुज-क्षेत्र में एक क्षेत्रीय राज्य की स्थापना के लिए होता है। इस क्षेत्रीय राज्य की स्थापना चोलों के अधीन हुई (नौवीं सदी ई. से 13वीं सदी ई.) इस राज्य की भिन्न प्रकार की राजनीतिक-सांस्कृतिक विशेषताएं थीं। इस इकाई में प्रशासन के कई पक्षों का विवेचन किया गया है। इन पक्षों की पहचान उनके विशेष प्रकार के सामाजिक-आर्थिक आधारों को केन्द्र बिन्दु बनाकर की गई है। राज्य के संसाधनों को गतियमान करने और इनको स्थायी बनाने वाले यंत्र का भी चित्रण किया गया है। अंत में, दक्षिण भारतीय राजनीति के वैचारिक आधार के विषय में विवेचन किया गया है।

12.2 क्षेत्र

इस इकाई में दक्षिण भारत का तात्पर्य उस क्षेत्र से है जिसको तमिलनाडू कहा गया लेकिन यह आधुनिक भाषायी राज्य तमिलनाडू से भिन्न है। यह एक त्रिभुज-क्षेत्र है और राजनीतिक क्षेत्र के रूप में इसकी सीमाएं सातवीं सदी ई. से 13वीं सदी ई. तक दक्षिणी कर्नाटक के भागों, दक्षिणी आंध्र प्रदेश और दक्षिण केरल के भागों तक फैली थीं। इस क्षेत्र को

कई मण्डलों में विभाजित किया जा सकता है। इन मण्डलों या क्षेत्रों का एक लम्बा ऐतिहासिक विकास हुआ। मैदाना में इसके अंतर्गत एक केन्द्रीय भाग और अन्य सहायक क्षेत्र हैं। इसका सहायक क्षेत्र नदियों की व्यवस्था के आधार पर उत्तर पश्चिम भागों में स्थित है और इसका ढलान पूर्वी समुद्री किनारों की ओर है। इसका पठारी भाग कर्नाटक तथा केरल तक फैला हुआ है। इन क्षेत्रों की भिन्न-भिन्न प्रकार की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विशेषताएं हैं। इन क्षेत्रों को चोल शासकों के समय से ही **मण्डलम** कहा जाने लगा था। उदय होने वाले क्षेत्रीय राजनीतिक संगठनों के केन्द्रीय बिन्दुओं को संपूर्ण क्षेत्र के भूगोल ने प्रभावित किया।

12.3 राजनीतिक शक्तियों का उदय

बहुत-सी क्षेत्रीय राजनीतिक प्रणालियों के विकास ने भारत में गुप्त काल के बाद के इतिहास को प्रभावित किया। उड़ीसा एवं तमिलनाडू जैसे क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ और इन राज्यों की अपनी-अपनी क्षेत्रीय संस्कृतियों का विकास भी। कुछ बहुत छोटे राज्यों का उदय भी हुआ तथा वे दो बड़े राज्यों के बीच सहायक राज्य मात्र बनकर रह गए। इसका अच्छा दृष्टांत कांचीपुरम के पल्लवों और तमिलनाडू में मदुरै के पांड्यों (छठी सदी ई. से 9वीं सदी ई. तक) जैसे दक्षिण भारत के बड़े राज्यों के उदय से दिया जा सकता है। इन दोनों बड़े राज्यों के बीच में पश्चिमी गंगेय, कदमबास, बन और अनेक दूसरे राज्य विद्यमान थे तथा ये सभी छोटी-छोटी राजनीतिक शक्तियां थे। ये छोटे राज्य कभी दक्खन के बड़े राजवंशों के प्रति वैकल्पिक रूप में राजभक्ति का प्रदर्शन करते थे (जिसका इकाई 11 के भाग 11.4 में चित्रण किया गया है) और कभी-कभी ये तमिल के मैदानों में स्थित बड़े राज्यों के प्रति इस तरह की राज्य भक्ति को दिखाते या अवसर मिलने पर अपनी स्वतंत्रता की स्थापना भी कर देते थे। दक्षिण भारत में क्षेत्रीय राजनीति में सबसे अधिक शक्तिशाली चोल राज्य था। चोलों ने 9वीं सदी ई. से 13वीं सदी ई. तक शासन किया। इनके राज्य का केन्द्रीय आधार कावेरी नदी की घाटी था और इन्होंने संपूर्ण तमिल त्रिभुज क्षेत्र पर अपनी क्षेत्रीय सम्प्रभुता को स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। चोलों ने एक ऐसे क्षेत्रीय राज्य की स्थापना की, जिसकी राजनीतिक-सांस्कृतिक विशेषताएं भिन्न थीं।

12.4 दक्षिण भारतीय राजनीतिक संगठन पर विभिन्न दृष्टिकोण

तमिलनाडू की क्षेत्रीय राजनीति के विषय में तीन तरह के भिन्न दृष्टिकोण हैं। सामान्य तौर पर दक्षिण भारतीय राजनीतिक प्रणाली पर किए गए महत्त्वपूर्ण अध्ययन तथा विशेष कर तमिलनाडू पर किए गए इस तरह के अध्ययनों से स्पष्ट है कि उनके द्वारा मुख्यतः इस क्षेत्र की प्रशासनिक संस्थाओं तथा उनके इतिहास पर ही प्रत्यक्ष रूप से लिखा गया है। ये अध्ययन मुख्य रूप से राजतंत्र, ब्रह्मदेय और इसकी सभा एवं मंदिर तथा उनके संगठन एवं कार्यों तक ही सीमित थे। उन्होंने न तो एक तर्कपूर्ण विश्लेषणात्मक ढांचे को अपनाया और न ही राजनीतिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करने के लिए एकीकृत दृष्टिकोण को लागू किया। उन्होंने इनको आर्थिक-सामाजिक संगठन के साथ संबंधित करके अध्ययन करने का प्रयास भी नहीं किया। संक्षेप में, उन्होंने राजनीतिक व्यवस्था को समाज एवं अर्थव्यवस्था से अलग करके समझने का प्रयास किया। उनको राज्य एवं साम्राज्य की साम्राज्यवादी अवधारणा, केन्द्रीकृत राजतंत्र तथा शक्तिशाली नौकरशाही ने प्रभावित किया। इन अध्ययनों की मान्यताएं थीं कि आधुनिक राज्य की प्रचलित सभी विशेषताएं प्रारंभिक कालों में भी विद्यमान थीं।

राजनीतिक संगठन पर नवीन दृष्टिकोणों को अभी हाल में किए गए अध्ययनों के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इन दृष्टिकोणों के द्वारा, सामाजिक निर्माण, आर्थिक संगठन तथा राजनीतिक तंत्रों के अंतर्संबंधों को समझने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। ये अध्ययन विकास एवं परिवर्तन की प्रक्रियाओं पर केन्द्रित हैं क्योंकि इन्हीं के कारणवश क्षेत्रीय राजनीतिक प्रणालियों तथा राजनीतिक तंत्र के निर्माण में ब्रह्मदेय तथा मंदिर जैसी संस्थाओं की भूमिका का उदय हुआ। इसके फलस्वरूप केन्द्रीयकृत राज्य की अवधारणा का अनुसरण करने वाले परम्परागत अध्ययनों के विषय में गंभीर प्रश्नों को उठाया गया। इस नवीन विश्लेषण की विधि को एक विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया गया तथा मध्यकालीन दक्षिण भारतीय राजनीति की विशेषता का चित्रण करने के लिए खंडात्मक राज्य की अवधारणा का उपयोग किया गया। इन दोनों दृष्टिकोणों के बीच का अंतर स्थानीय संगठनों के चरित्र पर आधारित था। उनकी स्वायत्ता के स्तर और केन्द्रीय नियंत्रण का प्रसार या प्रत्यक्ष राजनीतिक नियंत्रण का उपयोग तमिलनाडू के विभिन्न मंडलों के ऊपर शासक वंशों के द्वारा किया जाता था। प्रथम दृष्टिकोण, स्थानीय प्राथमिकता एवं स्वायत्ता (जिसको वे स्थानीय स्व-सरकार कहते हैं) के अस्तित्व के बावजूद, सभी क्षेत्रों के ऊपर केन्द्रीय सत्ता के व्यापक एवं अधिक नियंत्रण की बात करता है, जबकि दूसरा दृष्टिकोण इसको यह कहकर खारिज कर देता है कि यह विरोधाभासों से भरपूर है तथा इसका मानना है कि स्थानीय संगठनों को बहुत अधिक स्वायत्ता प्राप्त थी एवं केन्द्रीय भाग को छोड़कर शासक वंश की मात्र आनुष्ठानिक सम्प्रभुता कायम थी।

इन दोनों अतिशय दृष्टिकोणों के विरुद्ध एक तीसरा दृष्टिकोण भी है और यह इन दोनों विचारों में कुछ संशोधन करता है इसके अंतर्गत चोल राज्य का अध्ययन सम्पन्न अभिलेखीय आंकड़ों के सावधानीपूर्वक विश्लेषण पर आधारित है। इस दृष्टिकोण के मानने वालों का तर्क है कि केन्द्रीयकृत राजनीतिक संगठन का विकास स्वतंत्र किसानों की उस प्रारंभिक

स्थिति से हुआ, जिसके अंतर्गत क्षेत्रों पर किसान सभाओं का नियंत्रण था। ये कृषक कई प्रकार की संस्थाओं के द्वारा और राजनीतिक सत्ता द्वारा लागू किए गए नए प्रकार के प्रशासनिक उपायों के माध्यम से एकीकृत किए गए थे। चोल राज्य 11वीं सदी ई. में अपनी शक्ति एवं प्रगति के चरम पराकाष्ठा पर था और उसके राज्य की विशेषता केंद्रीकृत राजनीतिक संगठन थी।

12.5 उप-क्षेत्रीय राजनीति

कांचीपुरम के पल्लवों और मदुरै के पांडयों के अधीन (छठी सदी ई. से नौवीं सदी ई. तक), विशाल तमिल क्षेत्र के दो उप-क्षेत्र क्रमशः पलार-चैय्यार घाटी एवं वैगयतमरापर्नि घाटियों में दोनों राजतंत्रों के क्षेत्रीय आधार बन गए। पल्लवों पर दक्खन तथा आन्ध्र क्षेत्रों के राजनीतिक वातावरण का प्रभाव पड़ा एवं इन क्षेत्रों में उनकी उत्पत्ति सातवाहन शासकों के सहायकों के रूप में हुई थी। (इकाई 11 के भाग 11.3 को भी देखिए) उत्तर सातवाहन काल में एक राजनीतिक शक्ति के रूप में पल्लवों का उदय हुआ तथा इस काल की विशेषता ब्राह्मणिक सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था और भूमि अनुदानों की अर्थव्यवस्था की ओर रूपांतरण था। फलतः तमिल प्रदेश के उत्तरी भाग में पल्लवों की राजनीति ने दक्खन तथा आंध्र के क्षेत्रों में विकसित गुप्त एवं उत्तर गुप्तकाल के सांस्कृतिक मूल्यों को लागू किया। लेकिन उत्तरी तमिलनाडू (उस समय इसको तोन्दायनाडू कहा जाता था) की यह राजनीतिक व्यवस्था विशेष प्रकार की कृषि व्यवस्था के कारण उत्तर भारतीय ब्राह्मणवादी राजनीतिक व्यवस्था से थोड़ा भिन्न थी। इस क्षेत्र के कृषि समाज की प्रकृति पर किसान संगठनों का प्रभुत्व था और इन संगठनों का विकास "संगम युग" (प्रथम सदी ई. से तीसरी सदी ई. तक) के नाम से प्रसिद्ध प्रारंभिक ऐतिहासिक काल से हुआ। पल्लवों के राज्य का ढांचा यद्यपि धर्मशास्त्रों में प्रदत्त प्रारूप से प्रभावित था, लेकिन उत्तरी क्षेत्रीय स्वरूपों तमिल क्षेत्र की आवश्यकता के अनुरूप अपनाया गया और इसलिए पल्लवों ने ब्राह्मणवादी राजतंत्र को स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। उनके इस राज्य का क्षेत्रीय आधार कांचीपुरम के आसपास फैला हुआ था और इसने एकता के नवीन रूपों को ब्रह्मदेय एवं मंदिर के माध्यम से प्राप्त किया। इसका चित्रण उनके ताम्र पत्रों के प्रमाणों में किया गया है। ये ताम्र पत्र दो भाषाओं में है। साथ ही उनके द्वारा स्थापित पौराणिक धर्म एवं मंदिरों में भी (तमिल तथा संस्कृत) प्रमाण मिलते हैं। पल्लवों ने स्वयं को विष्णु तथा महाकाव्यों के नायकों का वंशज होने का दावा प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने लिए प्रभावशाली वंशावली को तैयार किया तथा इसके द्वारा अपने शासन को वैधता प्रदान की। उनकी मूलभूत विचारधारा को पौराणों के विश्व संबंधी दृष्टिकोण से ग्रहण किया गया था। मदुरै के पांडयों ने भी इसी तरह के राजतंत्र पर आधारित राज्य की स्थापना की थी। उन्होंने स्वयं को शिव एवं चन्द्रमा का वंशज बताया तथा अपना वैचारिक गुरु अगस्त्य ऋषि को बताया।

पल्लवों एवं पांडयों ने तमिल क्षेत्र के अधिक उपजाऊ एवं अच्छी प्रकार से सिंचित कृषि के मुख्य भू-भाग कावेरी घाटी के ऊपर अधिकार किया। उन्होंने कृषि विस्तार के कार्य को भी आगे बढ़ाया तथा ब्रहमदेय एवं मंदिर के द्वारा इसका एकीकरण किया। इसने कृषि अथवा कृषक इकाइयों को एकीकृत करने में मदद की। इन कृषक इकाइयों को नाडू (अथवा कुर्रम) कहा जाता था (विस्तृत जानकारी के लिए इकाइयों 1.2.2 तथा 1.3 को भी देखें)।

बोध प्रश्न 1

1) दक्षिण भारतीय राजनीतिक प्रणाली का अध्ययन करने के लिए तीन दृष्टिकोण कौन से हैं ?

....

....

....

....

....

2) उत्तरी तमिलनाडू के कृषि समाज की कौन-कौन सी मुख्य विशेषताएं हैं ?

....

....

....

....

12.6 कृषि व्यवस्था एवं राजनीतिक संगठन

कृषि व्यवस्था एवं राजनीति को उचित प्रकार से समझने के लिए हमें अन्य कई पक्षों का अध्ययन करना होगा। उनका प्रारंभ हम नाडू से करेंगे।

12.6.1 नाडू

नाडू का प्रारंभ पल्लवों के शासन काल से पूर्व हुआ था तथा इसकी एक समान कृषि विशेषताएं हैं। यह नातेदारी पर आधारित एक सामाजिक संगठन है। नाडू के अंतर्गत उत्पादन की प्रक्रियाओं पर नियंत्रण नत्तार सभा (नाडू) के द्वारा किया जाता और इस सभा का गठन कृषक परिवारों (वेलालों) के मुखियाओं से होता था। नाडू भरण-पोषण के स्तर की बस्तियाँ थीं और इनका गठन समान आर्थिक एवं सामाजिक गतिविधियों को संचालित करने के लिए किया जाता था। एक विशाल तथा व्यवस्थित कृषि संगठन के अंतर्गत नाडू का एकीकरण पल्लव, पांडेय एवं चोल जैसे शासक परिवारों के द्वारा ब्राह्मणों (ब्रहमदेय) तथा मंदिरों को दिए गए भूमि अनुदानों के द्वारा हुआ। इसी के कारणवश पहली बार क्षेत्रीय तमिल राजनीति का उदय हुआ।

सिंचाई की योजनाओं के निर्माण, सिंचाई तकनीकी को विकसित करने और सभा के नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मण सभा के द्वारा इनके प्रबंधन पर विशेष बल दिया गया। इस तरह की प्रारंभिक निम्न स्तर का उत्पादन करने वाली ये बस्तियां अतिरिक्त उत्पादन करने वाले केन्द्रों में रूपांतरित हो गई, जिसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण संभव हो सका (भाग 2.4.2 को भी देखिए)। ब्रह्मदेयों और मंदिरों ने न केवल कृषि संसाधनों के संगठन में सहायता की बल्कि संसाधनों के जुटाने तथा वितरण में एक राजनीतिक यंत्र के रूप में भी कार्य किया।

ब्रहमदेय और मंदिर के द्वारा समन्वय तथा विस्तार के साथ-साथ नए सिंचाई कार्यों के कारण—नाडू का आंतरिक ढांचा भी परिवर्तित हुआ। भूमि के अधिकार तथा भूमि-व्यवस्था और जटिल हो गई। भू-संबंधों का स्तरीकरण हुआ और नत्तार की बनावट में भी परिवर्तन आए। सामाजिक संगठन का नातेदारी आधार भी विलुप्त हो गया और उसका स्थान ब्राहमणवादी जाति व्यवस्था तथा आनुष्ठानिक पद व्यवस्था अर्थात् जाति पदानुक्रम ने ले लिया।

नातेदारी पर आधारित कृषि इकाई के रूप में नाडू के विकास से स्पष्ट है कि उत्पादन की व्यवस्था पर अनेक प्रकार से सामूहिक नियंत्रण विद्यमान था। यह **कानि** अधिकारों या भूमि में विद्यमान उन अधिकारों में भी देखा जा सकता है जिनको विक्रय या दान करके हस्तांतरित किया जा सकता था। भूमि पर अधिकारों की कई श्रेणियां विद्यमान थीं और उनको ब्रहमदेय (उर) की बस्तियां तथा परिवार के समकालीन संगठनों के द्वारा स्वीकृत मानकों के अनुरूप ही निश्चित किया जाता था एवं उपभोग में लाया जाता था।

प्रारंभिक परम्परागत लेखों में नाडू पर बहुत कम ध्यान दिया गया और इस प्रकार के अध्ययनों में इसका कोई महत्त्व न था। खण्डात्मक राज्य की अवधारणा के अंतर्गत—एक खण्ड के रूप में नाडू को काफी स्वायत्ता प्राप्त थी और इस तरह से प्रारंभिक मध्यकालीन दक्षिण भारतीय राज्य की विशेषता एक खण्डात्मक एवं किसान राज्य की थी। लेकिन नाडू का अध्ययन अन्य संस्थाओं से अलग करके स्वतंत्र रूप से नहीं किया जा सकता। नाडू, ब्रहमदेय तथा मंदिर ने एक साथ मिलकर तमिलनाडू के मैदानों के इतिहास में एक नए युग का प्रारंभ किया। नाडू को कृषि व्यवस्था की मूलभूत इकाई मानने के साथ ही अपरिवर्तनीय ग्रामीण समुदायों के पुराने सिद्धांत की वैधता समाप्त हो जाती है। आजकल वाद-विवाद, नाडू की स्वायत्ता के स्तर, नत्तार संगठन के स्थायित्व और खण्डात्मक राज्य की अवधारणा की वैधता पर केन्द्रित है।

12.6.2 ब्रहमदेय

ब्राह्मणों को दिए जाने वाले भूमि अनुदानों के विषय में जानकारी प्रारंभिक ऐतिहासिक काल से प्राप्त होती है। लेकिन इसके बावजूद भी तमिल क्षेत्र में यह प्रथा छठी सदी ई. के अंत तक ही संस्थागत स्वरूप को प्राप्त कर सकी। ब्रहमदेयों की स्थापना स्थायी तौर पर शासक परिवारों के द्वारा की गई थी। यह अधिकांशतः गैर-कृषि क्षेत्रों में या दो या दो से अधिक बस्तियों को एक-दूसरे के साथ मिलाकर नाडू या कोटम के अंतर्गत ही स्थापित की गई थीं। उन्होंने कृषि की उन्नत विधियों जैसे सिंचाई, उत्पादन के साधनों तथा संसाधनों के उचित प्रबंधन को लागू किया। पल्लवों तथा पांडयों की जलाशय व्यवस्थाओं का प्रबंधन ब्राह्मण सभाओं के द्वारा किया जाता था। ब्रहमदेयों को नाडू की नियमावली से अलग कर दिया गया। दसवीं सदी ई. से विशेषकर चोलों के शासन काल से बड़े-बड़े ब्रहमदेय आत्मनिर्भर इकाइयां बन गए और इन्होंने चोलों की अर्थव्यवस्था, प्रशासन एवं राजनीतिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उनको अक्सर राजनीतिक सत्ता का अग्रणी समझा जाता और ये राजनीतिक कार्यवाही के क्षेत्र को विस्तारित करने में भी सहायक होते थे।

ब्राह्मण भू-स्वामियों की सभा, गैर-ब्रहमदेय बस्तियों की सभा (उर) की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण संस्था के रूप में विकसित हुई। सभा की विकसित परिपक्वता का चित्रण एक बड़े ब्रहमदेय—प्रसिद्ध उत्तरामेरूर (चिंगगिलपत ज़िला) और आठवीं तथा नौवीं सदियों के एक महत्त्वपूर्ण ब्रहमदेव मानूर (तिरूनेलवेल्ली) के द्वारा होता है। आठवीं सदी से 13वीं सदी ई. के बीच एक अन्य महत्त्वपूर्ण केन्द्र तान कुरू था। तान कुरू एक केन्द्रीय स्थल के रूप में था तथा इसके अधीन कृषि एवं हस्तकला के उत्पादन के अन्य कई केन्द्र आते थे। ब्राह्मण मंदिर इन बस्तियों का मुख्य केन्द्र होते थे। इन पर प्रत्यक्ष रूप में सभा का नियंत्रण था और यह सभा बहुत-सी समितियों के द्वारा कार्य करती थी। इन समितियों को वरियाम कहा जाता था।

12.6.3 वालानाडू

11वीं सदी ई. में चोल शासकों के अधीन राजस्व और भू-राजस्व की जांच-पड़ताल करने के कार्य को व्यवस्थित रूप से किया जाता था। इस प्रक्रिया के अंतर्गत नवीन एवं बड़ी राजस्व इकाइयों का निर्माण नाडूओं के कुछ समूहों ने एक साथ मिलकर तथा नाडूओं के विभिन्न वाला नाडूओं में विभाजन द्वारा किया गया। इसका निर्णय उनकी सिंचाई की आवश्यकताओं के द्वारा होता था और इसी कारणवश वालानाडू की सीमाओं का निर्धारण जल स्थलों के आसपास होता था। वालानाडू एक कृत्रिम इकाई थी और इसका राजनीतिक-आर्थिक विभाजन राजसत्ता की इच्छा के अनुरूप ही होता था। वालानाडू का नामकरण उन्हीं राजाओं के नाम पर किया जाता, जो इनका निर्माण करते थे। इनका संगठन अधिकारियों के पदानुक्रम की व्यवस्था और राजस्व एकत्रित करने वाले एक विभाग से जुड़ा होता था। यह विभाग राजस्व के विस्तृत लेखों को सुरक्षित रखता था। यह विभाग (पुरावे-वरितिनापक्कलम) प्रशासनिक तंत्र का सबसे प्रभावशाली अंग था और चोलों ने इसको संसाधनों को जुटाने के लिए विकसित किया।

12.6.4 मंदिर

9वीं सदी ई. से ही मंदिर को राजनीतिक ढांचे का कार्य करने वाला "सर्वोच्च" औज़ार समझा जाने लगा। चोल शासकों के अधीन मंदिर की भूमिका में वृद्धि हुई एवं कार्यों में विविधता आती गई यह क्षेत्रीय सम्प्रभुता के लिए संस्थागत संपर्क सूत्र का कार्य करने लगा। इसका तंजावूर तथा गंगाय-कोण्डाचालोपुरम के राजसी मंदिरों में अच्छी तरह से चित्रण हुआ है। इन मंदिरों के पास भूमि एवं नकद धन के अनुदानों, जमा किए गए सोने, उपहारों तथा विशाल व्यापारिक धन के रूप में अथाह सम्पत्ति जमा हो गई थी। ब्राह्मण वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत अनुष्ठानिक पद व्यवस्था के माध्यम से इन मंदिरों का प्रशासन सभा, उर तथा नगरम के हाथों में होता था। संसाधनों के वितरण में मंदिर को ब्रहमदेय की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका प्राप्त थी। यह मंदिर नाम की संस्था ही थी, जिसके माध्यम से 11वीं सदी ई. में चोलों ने केन्द्रीकृत सत्ता को प्राप्त कर लिया क्योंकि इसकी अर्थव्यवस्था और संसाधनों की सहायता से चोल शासक नाडू की सीमाओं से बाहर आकर स्थानीय गठबंधन को तोड़ सके। इस मंदिर व्यवस्था ने राजा के द्वारा स्थानीय मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए एक आधार उपलब्ध कराया। राजा ऐसा मंदिर की जमा सम्पत्ति की जांच-पड़ताल करने, खर्च के स्तर का अनुमान करने तथा धन का पुनः आवंटन करने वाले शाही अधिकारियों के माध्यम से ही कर पाता था।

12.6.5 नगरम : बाज़ार केन्द्र

नगरम प्रशासन का एक और महत्त्वपूर्ण अंग था। इसका उदय 9वीं सदी ई. में उस समय हुआ था, जबकि बाज़ार केन्द्र का प्रशासन व्यापारिक संगठन (नगरात्तार) के द्वारा किया जाने लगा। फैलते कृषि समाज की बढ़ती आवश्यकताओं के साथ-साथ, इस तरह के बाज़ार केन्द्रों का विकास अधिकतर नाडूओं में हुआ। जहां ये एक ओर अपने विनिमय के लक्ष्यों को पूरा करता वहीं ये ब्रहमदेय एवं दूसरी बस्तियों की जरूरतों को भी पूरा करने लगा। नाडू तथा नगरम पारस्परिक तौर पर एक-दूसरे के समर्थक थे। नगरम के सदस्य वे कृषक होते थे, जो अपने अतिरिक्त उत्पादन को व्यापार के द्वारा बेच सकते थे। कुछ समय बाद वे पूर्णरूपेण व्यापारिक समुदाय के सदस्यों के रूप में रूपांतरित हो गए और उनको नगरात्ततार कहा जाने लगा। ब्रहमदेयों की ही भांति नगरम को विशेष दर्जा प्राप्त था और नाडू की तरह उनको भी स्वायत्तता प्राप्त थी। नगरम का निर्माण या उनका प्रारंभ अक्सर शासक परिवार के द्वारा किया जाता था। नगरम राज्य की सरकार के साथ नगरम की राजस्व विषयों में प्रत्यक्ष व्यवस्था होती थी और वे मंदिर प्रशासन में भी भाग लेते थे। ब्रहमदेय एवं नगरम ने नाडूओं को एक साथ एक समान राजनीतिक संगठन तथा विनिमय की एक समान व्यवस्था के अंतर्गत किया। इस तरह से इसने राज्य के संश्लेषण की प्रक्रिया में सहायता की।

नगरमों के तंत्र का उद्भव 9वीं सदी ई. तथा 12वीं सदी ई. के बीच हुआ। कांचीपुरम तथा तंजावूर जैसे विशाल व्यापारिक केन्द्रों के साथ-साथ राजनीतिक केन्द्रों को मानगरम या विशाल नगरम कहा जाता था। दसवीं सदी ई. में दक्षिण भारत, श्रीलंका, दक्षिण-पूर्वी एशिया एवं चीन के बीच व्यापार की वृद्धि के कारण नगरम के इस तंत्र का विकास विशाल अंतर-क्षेत्रीय विनिमय के रूप में हुआ। चोलों ने इस व्यापार को श्रीलंका तथा श्री विजया (सुमात्रा) को समुद्री जहाज़ी बेड़े का अभियान भेजकर तथा चीन को एक व्यापारिक शिष्टमंडल भेजकर और प्रोत्साहित किया। उन्होंने व्यापारिक संगठनों को अधिकार पत्र जारी करके अपना संरक्षण प्रदान किया। इन अधिकार पत्रों के द्वारा व्यापारी वाणिज्य पर आधारित नगरों की स्थापना कर सकते थे तथा अपने भाड़े के सिपाहियों के द्वारा इन नगरों की रक्षा भी। गोदामों तथा वितरण केन्द्रों को **एरिविरप्पात्तना** के नाम से जाना जाता था। ये नगरम के साथ-साथ **मनिग्रामाम** जैसे दूसरे छोटे स्थानीय व्यापारी संगठनों तथा **अन्जूवन्नाम** जैसे विदेशी व्यापार संगठनों के साथ भी व्यापार करते थे। वे विलासिता की चीज़ों, दूसरे देशों से विदेशी वस्तुओं तथा दक्षिण भारतीय सूती वस्त्रों में व्यापार करते थे। विनिमय के रूप में वे **चिट्टिरामेलि पेरिपान्डू** से कृषि उत्पादनों को प्राप्त करते थे। **चिट्टिरामेलि** सभी चारों वर्गों के किसानों का एक संगठन था और उसकी उत्पत्ति तमिल क्षेत्र में हुई। उनकी गतिविधियों का प्रसार 12वीं सदी में दक्षिणी कर्नाटक और दक्षिणी आंध्र प्रदेश के क्षेत्रों में हुआ।

बोध प्रश्न 2

1) नाडू का आंतरिक ढांचा कैसा था एवं क्यों परिवर्तित हुआ ?

....

....

....

....

....

....

2) ब्रहमदेय कैसे महत्त्वपूर्ण हो गया ?

....

....

....

....

....

3) मंदिर ने राजनीतिक व्यवस्था में कैसे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया ?

....

....

....

....

....

4) नगरमों का महत्त्व कैसे बढ़ा ?

....

....

....

....

12.7 कर-व्यवस्था

खण्डात्मक राज्य की अवधारणा के अनुसार, एक स्थायी कर व्यवस्था का राज्य में अस्तित्व नहीं होता। लेकिन चोलों के अभिलेखों में कर नाम के शब्द का आंकड़ों के रूप में विश्लेषण किया गया है। बड़े भू-कर को **कदम्माप** कहा जाता था। भूमि पर आधारित अन्य छोटे करों की भांति इसकी दर भी सभी जगहों पर एक समान थी। स्थानीय स्तर से लेकर वालानाडू, नाडू तथा उर के स्तरों तक सरकार द्वारा राजस्व के संग्रहण एवं हस्तांतरण की एक व्यवस्था विद्यमान थी। स्थानीय एवं केन्द्रीय, दोनों प्रकार के करों की पहचान की गई है। गैर-कृषि करों में यदा-कदा होने वाली वृद्धि की भी जानकारी प्राप्त होती है। राजस्व संग्रहण के कार्य में स्थानीय अधिकारियों के अधिक सक्रिय होने के प्रमाण भी मिलते हैं। करों को एकत्रित करने के स्थानीय स्वरूपों तथा क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में निवेश के कारण केन्द्रीय संग्रहण तथा वितरण जैसी समस्याओं से बचा जाता था। व्यापार में राज्य की सक्रिय रुचि तथा वाणिज्य के अभियानों ने दूसरे संसाधनों के आधार को उपलब्ध कराया। राजसी बंदरगाहों के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया। इन बंदरगाहों पर राज्य के अधिकारियों के द्वारा चुंगी लगाई जाती थी। व्यापार को बढ़ावा देने के लिए करों में छूट देना भी राज्य की नीति का एक भाग था।

12.8 नौकरशाही

प्रसिद्ध इतिहासकारों के द्वारा चोल राज्य को एक काफी विकसित नौकरशाही के तंत्र वाला राज्य बताया गया है। लेकिन खण्डात्मक राज्य के सिद्धांत को मानने वाले विद्वान इस तरह की नौकरशाही के अस्तित्व से इंकार करते हैं। परन्तु तथ्यात्मक आंकड़ों से स्पष्ट है कि केंद्रीय तथा स्थानीय स्तरों पर अधिकारीगण विद्यमान थे। **मुवेन्द बेलान** जैसी उपाधियों को धारण करने वाले व्यक्तियों के नामों में अधिकारी शब्द जुड़ा होना एक नौकरशाही की उपस्थिति को दर्शाता है, विशेषकर पदानुक्रम पर आधारित राजस्व विभाग में। **पेरून्दरम** (उच्च स्तर) और **सिरूतारम** (निम्न स्तर) जैसे शब्दों से स्पष्ट है कि अधिकारियों के बीच पद व्यवस्था विद्यमान थी और यह नागरिक प्रशासन तथा सेना, दोनों में पाई जाती थी। राज दरबार के अधिकारियों (उदन कुट्टम) तथा देश में भ्रमण करने वाले अधिकारियों (विदयियल अधिकारी)

के विषय में भी जानकारी प्राप्त होती है। राजा की सरकार का **मण्डलामुदाली नाडू वगाप** तथा **मध्यस्थ** जैसे स्थानीय अधिकारियों के माध्यम से स्थानीय स्तर पर होने का आभास होता था। ये अधिकारीगण राजा एवं स्थानीय जनता के बीच महत्त्वपूर्ण कड़ी का काम करते थे।

12.9 सैनिक संगठन

चोल साक्ष्यों में एक स्थायी सेना के अस्तित्व का कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं होता और न ही ऐसा कोई तथ्य मिलता है, जिससे कि यह आभास मिले कि सेना में भर्ती करने के लिए परिभाषित योग्यताएं थीं। फिर भी, इन क्षीण प्रमाणों को वैकल्पिक रूप में परिभाषित किया जाता है। परम्परागत विचार के अनुसार उस समय एक राजसी सेना का अस्तित्व था। लेकिन खण्डात्मक राज्य के सिद्धांत के व्याख्याकार इसको मानने से इंकार करते हैं और उनका कथन है कि सेनाएं "खण्डों" के स्तर पर एकत्रित होती थीं और वे कृषक खड़ाकूओं या जातियों और व्यापारिक संगठनों की सेनाएं होती थीं। लेकिन इन सबके बावजूद सेना के सरदारों को दिए भूमि अनुदानों के अभिलेख और सामरिक स्थलों पर सेना के कैम्पों के विषय में भी अनेक अभिलेख प्राप्त होते हैं जिनसे एक राजसी सेना के होने की पुष्टि होती है। सेना की दाएं बाजू की इकाई में उच्च एवं निम्न पदों का अस्तित्व था और सेना की इस इकाई को **वेलायक्कार** के नाम से जाना जाता था। राजसी प्रमाणों में बाएं बाजू की सेना की इकाइयों के भी उद्धरण प्राप्त होते हैं। स्थानीय सरदारों की सेनाएं सैनिक अभियानों के समय में राजसी सेनाओं की सहायता करती थीं।

12.10 नियंत्रण की पद्धति

जिन राजनीतिक-सांस्कृतिक मण्डलों की प्रकृति का विवरण किया गया है, उनका विकास प्रारंभिक ऐतिहासिक काल से प्रारंभ हुआ था। चोलों ने इस प्रकार के मण्डलों के प्रारूप को धारण करते हुए नियंत्रण की भिन्न-भिन्न पद्धतियों को विकसित किया। प्रत्येक मण्डल का नाम राजा के नाम पर रख दिया जाता था। राजाराज-I (सन् 985 ई.-1014 ई. तक) ने राजस्व के सर्वेक्षण एवं वालानाडू की व्यवस्था का प्रारंभ किया। उदाहरणार्थ, तोण्दायमण्डलम में कोट्टम (चरागाह से कृषि में विकसित) जैसी प्रारंभिक संरचनाओं को बिल्कुल भी नहीं बदला गया, लेकिन **तान-कुरु** को लागू किया गया। वालानाडू ने चोलमण्डलम में प्रारंभिक सरदारों की जागीरों और उत्तर में **नाडूविल नाडू** के आसपास मण्डलम का स्थान ग्रहण कर लिया। इसी तरह से रूपांतरित होते क्षेत्रों में सेना की टुकड़ियों को सामरिक महत्त्व के केन्द्रों पर लगा दिया गया। कर्नाटक के आसपास के क्षेत्रों के व्यापार मार्गों पर भी सेना को लगाया और इस तरह से संचार संपर्क को स्थापित किया गया। चोल राजकुमारों तथा **मण्डल मुदालियों** की नियुक्तियां इस तरह के उप-क्षेत्रों पर शासन करने के लिए की गई।

छोटे सरदार या क्षेत्र प्रमुख चोलों के राजनीतिक संगठन में विशेष प्रकार के मध्यस्थ स्तरों का प्रतिनिधित्व करते थे। इस तरह के छोटे क्षेत्रों के सरदारों को सामंत कहा जाता था। विभिन्न प्रकार की शर्तों के अंतर्गत राजा ने शक्तिशाली सरकारों के साथ यह व्यवस्था की, कि उनको किसी न किसी रूप में स्वायत्ता प्राप्त होगी और इसके बदले ये शक्तिशाली सरदार राजा को सैनिक सहायता उपलब्ध कराएंगे या फिर उस मण्डल में होने वाले व्यापार में राजा के हितों की सुरक्षा करेंगे। कभी-कभी कुछ सरदारों के क्षेत्रों को विभाजित कर लिया जाता लेकिन पुनः इन क्षेत्रों को इस शर्त के साथ सौंप दिया जाता कि स्थानीय नियंत्रण के लिए ये नए वंश राजा का समर्थन करेंगे। इन सरदारों के भी भिन्न-भिन्न पद होते थे और ये ऐसे चोल अधिकारी थे, जिनको नागरिक एवं सैनिक सेवाओं के साथ-साथ पुलिस अधिकार भी प्राप्त थे।

12.11 दक्षिण भारतीय राजनीति का वैचारिक आधार

पल्लवों तथा पांडयों की राजनीतिक वंशावली में यह दावा किया गया कि वे देवी-देवताओं, महाकाव्यों के नायकों तथा चन्द्र वंश के वंशज थे। उनके इस दावे ने उनके लिए एक मज़बूत वैचारिक आधार को तैयार किया। क्षत्रिय स्तर तथा दान अथवा उपहारों ने संप्रभुता के समर्थन में एक अतिरिक्त अवधारणा को उपलब्ध कराया। उनके वैचारिक आधार के लिए पौराणिक धर्म एवं विश्व दृष्टिकोण अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष थे।

चोलों की वंशावली अपने वैचारिक दावों में और भी जटिल है। सूर्यवंशी होने के साथ-साथ चोलों ने अपना स्वयं का प्रत्यक्ष संबंध "संगम" चोलों, कावेरी क्षेत्र और अपने पूर्वजों के द्वारा मंदिर निर्माण से स्थापित किया, जिससे कि वे अपनी संप्रभुता को वैधता प्रदान कर सकें। इन सबसे परे, उन्होंने तमिल वैष्णव तथा शैव संतों की भक्ति विचारधारा को महत्त्वपूर्ण तरीके से प्रोत्साहित किया और उन्होंने इस विचारधारा को मंदिर निर्माण, मंदिर अनुष्ठानों तथा मूर्ति निर्माण के द्वारा लोकप्रिय बनाया। मंदिर के प्रतीकवाद को क्षेत्रीय समानता के अनुरूप करके उन्होंने अपनी शक्ति को और सुदृढ़ किया। अनुष्ठानिक एवं राजनीतिक प्रभुत्व एक सिक्के के दो पहलू थे, जिससे कि खण्डात्मक राज्य के विचार की

सीमाएं और सीमित होती दिखाई पड़ती हैं। (इस विचार का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने के लिए इकाई 8 के भाग 8.3 को देखिए)।

बोध प्रश्न 3

1) क्या चोल राज्य में नौकरशाही विद्यमान थी ? कुछ अधिकारियों के नाम बताइए ।

....

....

....

....

....

2) चोलों की प्रशासनिक नियंत्रण की क्या व्यवस्था थी ?

....

....

....

....

12.12 सारांश

इस इकाई में निम्नलिखित का अध्ययन किया गया है :

- दक्षिण भारत के अंतर्गत आधुनिक तमिलनाडू, केरल और दक्षिण कर्नाटक तथा आंध्र प्रदेश के क्षेत्र आते हैं।
- सन् 800 ई. से 1300 ई. के बीच उपरोक्त क्षेत्रों की राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति का।
- राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत केंद्रीकृत तथा खण्डात्मक नाम से प्रचलित परिकल्पनाओं की सापेक्ष वैधता के विषय में।
- कृषि एवं व्यापार के तंत्र का प्रसार तथा प्रशासन के केन्द्रों एवं वित्तीय शक्तियों के विकास पर उनका प्रभाव।
- संसाधनों को गतियमान करने की प्रकृति तथा इसको स्थायी करने वाले यंत्रवाद के विषय में, और
- नवीन उदित होने वाली राजनीतिक व्यवस्था को वैचारिक समर्थन उपलब्ध कराने में प्रमुख सामाजिक-आर्थिक तथा धार्मिक शक्तियों की भूमिकाओं के विषय में भी चर्चा की गई है।

12.13 शब्दावली

चिट्टिरामेलि : कृषकों का ऐसा संगठन जो सभी "चारों जातियों" से संबंधित था।

एरिविपत्तना : गोदाम एवं वितरण केन्द्र।

कदमाप : एक प्रमुख भूमि-कर।

कोट्टम : चरागाह युक्त कृषि क्षेत्र।

मध्यस्थ : स्थानीय अधिकारी — ये निष्पक्ष तरीके से भूमि तथा अन्य अनुदानों से संबंधित राजसी आदेशों का पालन करता था।

मण्डला मुडालि : मण्डलम का सरदार।

मण्डलम : इस शब्द का उपयोग राजनीतिक-सांस्कृतिक क्षेत्र के लिए किया जाता था।

नाडू : किसान सभा या संगठन।

नाडू वगाय : वह अधिकारी, जो नाडू को संगठित करता था।

पेरूान्डरम : अधिकारियों की उच्च श्रेणी।

पुरावू-वारि-तिनायक्कलम : राजस्व अभिलेखों का विभाग।

दायां बाजू और बायां बाजू : सेना का दायें तथा बायें बाजुओं में एक समान समूहों में विभाजन।

सभा : ब्राहमण सभा।

तिरूत्तरम : अधिकारियों की निम्न श्रेणी।

तान-कूरू : स्वतंत्र इकाई।

उर : गैर-ब्राह्मण बस्ती तथा सभा।

वालानाडू : कृत्रिम राजस्व इकाई, जिसका निर्माण चोलों द्वारा किया गया।

वरियाम : वह समिति, जिसके माध्यम से सभा कार्य करती थी।

विदामिल विपइरमिल-अधिकारी : देश का भ्रमण करने वाला अधिकारी।

12.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) दक्षिण भारतीय राजनीति का पहले अध्ययन संस्थाओं के संगठन तथा कार्यों के माध्यम से किया जाता था। लेकिन हाल के अध्ययनों में सामाजिक निर्माण, आर्थिक संगठन एवं राजनीतिक ढांचे के बीच अंतर-संबंधों के विश्लेषण पर बल दिया गया है। तीसरे दृष्टिकोण के अनुसार स्वतंत्र किसान क्षेत्रों की प्रारंभिक स्थिति से विकसित हुए केंद्रीकृत राजनीतिक संगठन के अध्ययन पर बल दिया गया और इन कृषक क्षेत्रों पर कृषक सभाओं का नियंत्रण था। देखिए भाग 12.4 को।

2) कृषक संगठन और उनका प्रभाव ही कृषि समाज की मुख्य विशेषताएं थीं। भाग 12.5 को देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) ब्रह्मदेय तथा मंदिर के समन्वय एवं प्रसार के माध्यम से नाडू में अनेक परिवर्तन हुए। नवीन सिंचाई कार्यों ने भी योगदान किया। भूमि अधिकार एवं व्यवस्था और जटिल हो गई। भूमि संबंधों का भी स्तरीकरण हुआ। उपभाग 12.6.1 देखिए।

2) ब्रहमदेय के बाद स्वतंत्र इकाइयां हो गईं। उन्होंने आर्थिक तथा प्रशासनिक महत्त्व को प्राप्त किया। उपभाग 12.6.2 देखिए।

3) विशाल दान-दक्षिणा तथा अनुदानों के कारण मंदिर महत्त्वपूर्ण हो गए। मंदिरों की मदद से चोल स्थानीय मामलों में हस्तक्षेप कर सके। मंदिर राजसी प्रभुत्व के प्रतीक हो गए। उपभाग 12.6.4 देखिए।

4) नगरम का विकास बाज़ार केन्द्रों की विनिमय जरूरतों को पूरा करने के लिए हुआ। कुछ समय के बाद अंतर-क्षेत्रीय तथा दक्षिण एशिया के साथ व्यापार के कारण वे अति महत्त्वपूर्ण केन्द्रों के रूप में विकसित हुए। उपभाग 12.6.5 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) चोल शासकों के अधीन केन्द्र एवं स्थानीय स्तरों पर पदानुक्रम नौकरशाही विद्यमान थी। भाग 12.8 देखिए।

2) चोलों ने मण्डलम नामक प्रशासनिक क्षेत्रों को विकसित किया। इनको राजकुमारों के अधीन रखा जाता था। स्थापित मानकों के अनुरूप ही सरदार भी शासन को संचालित करने का कार्य करते थे। भाग 12.10 देखिए।

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

के. ए. नीलकंठ शास्त्री : *दि-चोल्स,* मद्रास, 1975। *हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडिया,* दिल्ली, 1984 (अंग्रेजी)।

सी. मीनाक्षी : *एडमिनिस्ट्रेटिव एण्ड सोशल लाइफ अण्डर दि पल्लव,* मद्रास, 1977 (संशोधित सम्पादन) (अंग्रेजी)।

आर. एस. शर्मा : भारतीय सामंतवाद, नई दिल्ली 1981।

टी. वी. महालिंगम : *साउथ इंडियन पॉलिटी,* मद्रास, 1955 (अंग्रेजी)।

बर्टन स्टैन : *पीजेंट स्टेट एण्ड सोसाइटी इन मेडिवल साउथ इंडिया,* दिल्ली, 1980 (अंग्रेजी)।

एन. करिश्मा : *साउथ इंडियन हिस्ट्री एण्ड सोसाइटी,* दिल्ली, 1984।

रोमिला थापर : *भारत का इतिहास,* नई दिल्ली।

डी. एन. झा : *प्राचीन भारत,* दिल्ली।

शिवशंकर मिश्र : *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास*।